भाग-3

# विज्ञान का अराजकतावादी सिद्धान्त

रॉबिन डनबार

अब तक मैंने अपना ध्यान विज्ञान के तर्कसंगत सिद्धान्तों पर केन्द्रित किया है, जिन्हें मुख्यधारा का ही हिस्सा माना जाता है। यह उचित नहीं होगा कि विज्ञान के दर्शनशास्त्र पर इस संक्षिप्त दृष्टिपात को कुन के विचारों के अलावा सापेक्षता के सिद्धान्त से सम्बद्ध अन्य दृष्टिकोणों का ज़िक्र किए बिना समाप्त कर दिया जाए। एक अहम लिहाज़ से सापेक्षता का नज़रिया कांट के इस कथन से निकलता है कि इस संसार को देखने की हमारी दृष्टि हमारे सिद्धान्त तय करते हैं। इस कथन को उसके तार्किक निष्कर्ष तक पहुँचाया जाए तो इसका ज़ोर इस बात पर है कि संसार के हमारे विवरण भी सिद्धान्तों के अस्तित्व को पहले से मान कर चलते हैं। सामाजिक विज्ञानों में यह नज़रिया इस दावे को बल देता है कि हम भाषा में इतने सराबोर रहते हैं कि हमारे द्वारा इस्तेमाल किए जा रहे शब्द अपने आस-पास के संसार को देखने के हमारे तौर-तरीके तक को तय करते हैं।

## अन्तर-सांस्कृतिक अन्तर

मैं जो कुछ भी पहले कह चुका हूँ, उससे स्पष्ट होगा कि उपरोक्त दावे में एक खास तरह का तार्किक आधार है। यदि हम भाषा की व्याख्या अपने ढाँचागत सिद्धान्तों के सन्दर्भ में करें तो स्पष्ट है कि भाषा सचमुच इस बात को तय करती है कि हम संसार को किस नज़रिये से देखते हैं: हमारे ढाँचागत सिद्धान्तों का मकसद बिलकुल इसी कार्य को पूरा करने का है - यानी हमारा ध्यान दृष्टिगोचर संसार की प्रमुख विशेषताओं की ओर दिलाना। हमारी भाषा अपने मौजूदा स्वरूप में इसलिए विकसित हुई है क्योंकि वह हमें अपने संसार को गठित करने का साधन प्रदान करती है। इस नज़रिये को ध्यान में रखें तो हम सब एक ही संसार में रह रहे हैं लेकिन उसके बारे में बात करने के लिए भिन्न-भिन्न शब्दों और विचारों को प्रयोग में लाते हैं: इसकी वजह से अन्तर-सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों के अन्तर्गत हो रही बातचीत

में गलतफहमियाँ उत्पन्न हो सकती हैं, लेकिन हम सबके द्वारा एक ही संसार में रहने के तथ्य (और यह, कि हम सब उसे लगभग एक ही नज़र से देखते हैं) का अर्थ है कि एक बार जब भाषाई अन्तर स्पष्ट कर दिए जाते हैं तो हम एक सार्थक, सुसंगत वार्तालाप कर सकते हैं।

इससे भी अधिक अतिवादी एक व्याख्या यह है कि विभिन्न संस्कृतियाँ अक्षरशः अलग-अलग संसारों में बसती हैं क्योंकि हम जो देखते और अनुभव करते हैं, वह असल में हमारी भाषा द्वारा तय होता है। ऑस्ट्रेलिया के मूल निवासी (अबॉरिजिनल) का संसार यूरोपियन निवासियों के संसार से आवश्यक तौर पर बहुत ही अलग है क्योंकि वह उस संसार को निर्मित करने में भिन्न अवधारणाएँ और विचार प्रयोग में लाता है; उसका तर्क अलग किस्म का है और कार्य-कारण सम्बन्ध का भाव भी अलग ही तरह का है, और इन कारणों से वह संसार की संरचना को हमारे अनुभव के मुकाबले अलग ढंग से देखता है। इसके परिणामस्वरूप इस बात की कोई आशा नहीं है कि हम कभी भी किसी दूसरी संस्कृति के व्यक्ति के साथ कोई सुसंगत बातचीत कर सकते हैं - इसलिए, कि हमारे पास कोई भी साँझा आधार नहीं है जिसकी मदद से हम एक संस्कृति की निर्मित अवस्थाओं को दूसरी संस्कृति की ऐसी अवस्थाओं में परिवर्तित कर पाएँ। सापेक्षता के सिद्धान्त के अनुरूप सोचने वालों के दृष्टिकोण का लब्बोलुबाब यही है, और प्रतीत होता है कि इस दृष्टिकोण ने सामाजिक मानवविज्ञान तथा मानविकी के क्षेत्रों में बहुत-से लोगों को काफी गहरे तक प्रभावित किया है।

## ज्ञानशास्त्रीय अराजकता

अमेरिकन दार्शनिक पॉल फेयरअबेंट (Feyerabend) सापेक्षता के सिद्धान्त की एक महत्वपूर्ण आवाज़ हैं। उनके विचार इसलिए दिलचस्प लगते हैं क्योंकि वे विज्ञान के लगभग अन्य सभी महत्वपूर्ण दार्शनिकों के विचारों के बिलकुल विपरीत हैं। इसी के फलस्वरूप वे ज्ञान के समाजशास्त्रियों के लिए एक प्रकार का दार्शनिक मसीहा बन गए हैं जब कि विज्ञान के परम्परागत दार्शनिक उन्हें काफी हद तक एक लीक से हट कर, आज़ाद-खयाल, विद्रोही किस्म का व्यक्ति मानते हैं। फेयरअबेंट हमेशा से ही ज्ञान की एक शाखा के रूप में विज्ञान के दर्शन के बड़े निन्दक रहे हैं - यहाँ तक कि वे इस बात पर ज़ोर देते रहे हैं कि वह व्यावहारिक वैज्ञानिकों के लिए किसी भी रूप में मूल्यवान नहीं रहा है क्योंकि वह तर्कशास्त्र की, और अर्थ निकालने से सम्बन्धित छोटी-मोटी समस्याओं में उलझा रहा है, जिनका अधिकतर वैज्ञानिकों के सक्रिय जीवन पर कोई प्रभाव नहीं रहा है। यह एक ऐसा नज़रिया है जिसके प्रति बहुत-से वैज्ञानिक बेशक गरमजोशी महसूस करेंगे! लेकिन वर्तमान सन्दर्भ

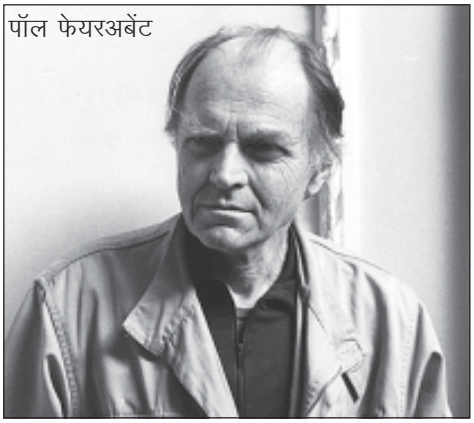
पॉल फेयरअबेंट

में फेयरअबेंट का प्रमुख महत्व इस बात में है कि उन्होंने विज्ञान को देखे जाने के नज़रिये के बारे में दो महत्वपूर्ण मान्यताओं को चुनौती दी है।

एक का सम्बन्ध तो इस बात से है कि हम किस प्रकार परिकल्पनाओं या धारणाओं का चुनाव करते हैं। फेयरअबेंट का मानना है कि विज्ञान स्वयंसेवा में लग गया है और इसका नतीजा यह है कि दिलचस्प किस्म के सिद्धान्त बिना किसी चर्चा के ही नकार दिए जाते हैं, केवल इस कारण से कि वे संसार के बारे में वर्तमान में प्रचलित विचारों के साथ मेल नहीं खाते। फेयरअबेंट के मतानुसार अपने वर्तमान सिद्धान्तों से नए तर्काधार प्राप्त करने की बजाए हमें किन्हीं नए सूझने वाले विकल्पों पर विचार करना चाहिए, पहली नज़र में वे चाहे कितने ही बेतुके और बेहूदा क्यों न लगें। इस अर्थ में फेयरअबेंट, उन्हीं के शब्दों में, ज्ञानशास्त्रीय अराजकता को प्रतिपादित करते हैं। विज्ञान की प्रकृति के बारे में परम्परागत सैद्धान्तिक सोच के लिए उनकी दूसरी चुनौती यह दलील देने में है कि वैज्ञानिक तरीके या विधि जैसा कुछ भी नहीं होता है। बल्कि वे तो यह दावा भी करना चाहते हैं कि विज्ञान को जिस प्रकार प्रयोग में लाया जा रहा है, उसमें एक धर्म होने के सभी प्रमुख विशिष्ट चिन्ह मौजूद हैं: उसकी कुछ विशेष स्तर की मान्यताएँ होती हैं जिन्हें उसका प्रतिपादन करने वालों द्वारा माना जाना लाज़मी होता है - और ऐसा न किए जाने की सूरत में सामाजिक बहिष्कार तथा बिरादरी से बाहर किए जाने का सामना करना पड़ता है।

विज्ञान के कम ही दार्शनिक फेयरअबेंट द्वारा दी गई विज्ञान की अवधारणा से सहमत हैं, हालाँकि वे मानते हैं कि उनके द्वारा दी गई कुछ दलीलों में दम है। मसलन, उनका दावा कि इस संसार के बारे में हमारा ज्ञान तब ही सब से बेहतर तरीके से विकसित होता है जब उसे नए सिद्धान्तों से चुनौती का सामना करना पड़ता है, विवादास्पद नहीं है। यह तो आखिर पॉपर के तर्क का आधार है: पॉपर हमेशा इस बात पर ज़ोर देते थे कि अटकलें और अनुमान (यानी नए तर्काधार) जहाँ तक हो सके, निर्भीक

होने चाहिए, क्योंकि जितना अधिक वे अविश्वसनीय लगेंगे, उतना ही अधिक मज़बूत उनका परीक्षण होगा। लेकिन फेयरअबेंट इससे भी आगे तक जाना चाहते हैंः वे बौद्धिक बहुलता के पक्षधर हैं, और उनका आग्रह खास तौर से उन लोगों को आकृष्ट करता है जो इस बात पर ज़ोर देते हैं कि विज्ञान को कोई विशेषाधिकार नहीं मिलने चाहिए। बल्कि फेयरअबेंट तो विज्ञान तथा कविता के बीच अनुरूपता तक का दावा करते हैंः उन्होंने एक बार सुझाव रखा था कि हमें परिकल्पनाओं का चुनाव इस आधार पर करना चाहिए कि वे हमें कितना आनन्द देती हैं।

लेकिन संसार के बारे में ज्ञान हासिल किए जाने के आम नुस्खे के तौर पर फेयरअबेंट का अराजकतावादी दर्शन एक तथ्य को ध्यान में रखने में असफल रहता है - कि वैज्ञानिक आपस की होड़ में लगी परिकल्पनाओं में चुनाव के लिए तर्क आधारित मापदण्डों का प्रयोग करने की कोशिश करते हैं। फेयरअबेंट शायद इस बात पर ज़ोर देना चाहेंगे कि जब वैज्ञानिक किसी विशेष सिद्धान्त को अस्वीकार करने का निर्णय लेते हैं तो वे ऐसा किसी-न-किसी सनक के आधार पर करते हैं। और हालाँकि कुछ मामलों में ऐसा होता भी है (क्योंकि किसी भी नए, जटिल विचार की मान्यताओं, संरचना तथा निहितार्थों के बारे में पूरी सावधानी से सोचने-विचारने की कोशिश और मेहनत किसी आइंस्टाइन तक को भी क्षीण कर सकती है), नए विचारों को पहली नज़र में ही नकार देना विज्ञान के लिए कोई मददगार तरीका नहीं है, क्योंकि विज्ञान में विकास अन्ततः संसार को देखने के नए तरीकों पर निर्भर करता है। असल में समस्या तो यह है कि कोई भी मूर्ख नए विचार सोच-निकाल सकता है; विकास की असली कुंजी यह अन्दाज़ा लगाने में है कि यह संसार वास्तव में कार्य कैसे करता है - और यह एक बहुत ही मुश्किल काम है।

## सार्थक विचारों की अमरता

विज्ञान की शाश्वत् समस्या चन्द अच्छे विचारों को बाकी की बेकार बातों से अलग करने की है। आम तौर पर वैज्ञानिक बहुत-सी रणनीतियाँ काम में लेते हैं जो अनौपचारिक तरीके से ऐसा करने में मदद देती हैं। एक तो यह कि नया विचार, खुद के अलावा दूसरे बहुत-से लोगों को प्रमाण और तर्क के आधार पर अपना कायल बनाएः इस प्रकार हम कम-से-कम इन्सान की यह सोचने की कमज़ोरी के विरुद्ध सावधान रहते हैं कि हमारे द्वारा रचा गया कोई भी विचार हमारी अद्वितीय, असाधारण प्रतिभा का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरी रणनीति यह है कि सम्बन्धित विचार उन सन्दर्भों में अर्थपूर्ण लगे जिनके सम्बन्ध में हमारे पास पूर्व-ज्ञान है - यदि वह वर्तमान संसार के हमारे ज्ञान के विरुद्ध जाता

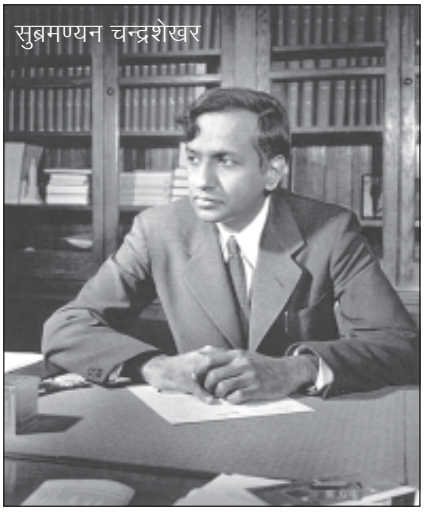
सुब्रमण्यन चन्द्रशेखर

है तो एक बेतुके किस्म के विचार के सही होने की कम ही गुंजाइश होगी। तीसरा, यदि किसी विशेष तर्काधार को इसलिए अस्वीकार कर दिया जाता है कि वह निरर्थक लगता है, तो इस का यह अर्थ नहीं है कि उस पर कभी भी पुनर्विचार न किया जाए। भारतीय खगोलशास्त्री सुब्रमण्यन चन्द्रशेखर का मशहूर उदाहरण इसी बात से सम्बन्धित है।

1928 में चन्द्रशेखर ने सितारों में स्वयं अपनी गुरुत्व की शक्तियों का प्रतिरोध करने सम्बन्धित क्षमताओं के बारे में कुछ नए विचार विकसित किए: वे गणितीय आधार पर यह दिखा पाने में सफल हो गए कि सितारे अपने नाभिकीय ईन्धन (न्यूक्लियर फ्यूल) के समाप्त होने पर स्वयं अपने पिण्ड की गुरुत्व शक्तियों का प्रतिरोध करने में सक्षम नहीं रहेंगे, और इस लिए स्वयं पर ही ढह जाएँगे। चन्द्रशेखर द्वारा किए गए गणित के मुताबिक जिन सितारों का परिमाण (mass) हमारे सूर्य के परिमाण से लगभग डेढ़ गुना से भी कुछ कम है (एक मूल्य जिसे चन्द्रशेखर सीमा के नाम से जाना जाता है), वे *व्हाइट् ड्वार्फ* नामक एक अत्यधिक सघन सितारे के रूप में सामने आएँगे। लेकिन चन्द्रशेखर के गणित के निहितार्थ ये भी थे कि उन्हीं परिस्थितियों में अधिक विशाल सितारे गायब हो जाने की हद तक अत्यधिक छोटे आकार में ढह जाएँगे (जिसे हम आज *ब्लैक होल* की प्राकृतिक घटना के रूप में जानते हैं)। दुर्भाग्य से केम्ब्रिज में उनके अधीक्षक, मशहूर भौतिकविज्ञानी ऑर्थर एडिंग्टन को ऐसा झटका लगा कि उन्होंने चन्द्रशेखर से इस विचार के नामाकूल और बेतुका होने की बात कही। एक कर्तव्यपरायण विद्यार्थी होने के नाते चन्द्रशेखर ने अपने विचारों पर आगे बढ़ने की प्रक्रिया को वहीं विराम दे दिया। लेकिन कई दशकों बाद उन्होंने इन विचारों पर फिर से अधिक विस्तार से काम करना शुरू किया और समय के साथ इन्हीं के आधार पर उन्हें नोबेल पुरस्कार की प्राप्ति हुई। ब्लैक होल्ज़ तथा न्यूट्रोन सितारों के बारे में हमारी मौजूदा समझ पर चन्द्रशेखर के विचारों का विशेष

तौर पर महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। हाँ, 1928 में हमारी समझ और ज्ञान की स्थिति को ध्यान में रखें तो ये विचार निरर्थक लगते थे। लेकिन लगता है कि एक अच्छे सिद्धान्त को हमेशा के लिए दबाकर नहीं रखा जा सकता।

## एकदम नए विचार

ऐसा ही एक और उदाहरण जर्मन मौसम विज्ञानी एल्फ्रेड वेगेनर द्वारा 1915 में प्रतिपादित महाद्वीपीय विस्थापन के सिद्धान्त का है। वेगेनर ने तर्क दिया कि 20 करोड़ वर्ष पूर्व धरती के महाद्वीप पैंजिया नामक अतिविशाल महाद्वीप के रूप में एक ही विशाल समूह के तौर पर मौजूद थे, और यही बाद में विभिन्न महाद्वीपों के रूप में अलग-अलग हो गए (जिन्हें हम उनके वर्तमान स्वरूप में देखते हैं), और उनका खिसकना लगातार जारी रहा। इसके लिए उनके द्वारा दिया गया प्रमाण आंशिक रूप से इस तथ्य पर आधारित था कि अपने मौजूदा स्वरूप में महाद्वीप एक विशाल चित्र पहेली की तरह एक-दूसरे में जुड़ते हुए से नज़र आते हैं। उदाहरण के लिए दक्षिणी अमेरिका बहुत ही सफाई के साथ पश्चिमी अफ्रीका के कन्धे के उभार में बिलकुल उपयुक्त ढंग से सट जाता है। वेगेनर के विचारों को कभी भी गम्भीरता से नहीं लिया गया। उनकी ओर ध्यान तो 1960 के दशक में जाना शुरू हुआ जब भूगर्भविज्ञानियों को प्रमाण मिलने प्रारम्भ हुए कि धरती का पटल (layer) असल में कई

एल्फ्रेड वेगेनर

पट्टिकाओं (tectonic plates) से मिलकर बना है। ये प्लेट्स धरती के पिघले हुए अन्दरूनी सारभाग पर तैरती रहती हैं और लगातार गतिशील रहती हैं। जब उनके किनारे आपस में टकराते हैं तो रॉकीज़, हिमालय तथा ऐंडीज़ जैसी पर्वत शृंखलाएँ ऊपर को उठ जाती हैं या फिर पूर्वी अफ्रीकन रिफ्ट घाटी या कैलिफोर्निया के सैन ऐंड्रियज़ जैसी दोष रेखाएँ (फॉल्ट लाइन्ज़) उभर कर आती हैं। जब इस तथ्य की पहचान कर ली गई तो वे जीवभौगोलिक (बायोज्योग्राफिकल) प्रमाण अचानक सार्थक और तार्किक लगने लगे जो एक-से प्रकार के जीवाश्मों की प्रजातियों (फॉसिल स्पीशीज़) के उन महाद्वीपों में पाए जाने के बारे में थे जहाँ पर अब बहुत ही अलग किस्म के जीव पाए जाते हैं।

## तर्क-आधार और विचारों की जाँच

हमें सतर्क रहना होगा कि इस प्रकार के उदाहरणों की व्याख्या इस बात के प्रमाण के तौर पर न की जाए कि वैज्ञानिक व्यवस्थाएँ माफियानुमा षडयंत्र के तहत नए विचारों को सुनने तथा स्थान देने में बाधा उत्पन्न करती हैं। थोड़े-बहुत महत्व वाले अधिकतर विचार और सिद्धान्त या तो सुरक्षित रहेंगे या फिर उन्हें फिर से खोज लिया जाएगा। कोई विशेष वैज्ञानिक चाहे कितना ही माफिया सरदार की तरह क्यों न हो, वह इस संसार में हर किसी को किसी अन्य व्यक्ति के अस्थाई तौर पर प्रस्तुत नए सिद्धान्त पर विचार करने से नहीं रोक सकता। वास्तव में तो इस बात के अच्छे-खासे प्रमाण हैं कि आलोचनात्मक प्रक्रिया को वैज्ञानिक कार्यविधि के आवश्यक हिस्से के तौर पर देखा जाए। यह प्रक्रिया उन विचारों और सिद्धान्तों को छाँटने के लिए प्रारम्भिक छलनी का काम करती है जो पूरी तरह से बेतुके हैं या जिन्हें और भी अधिक सावधानी से विकसित किए जाने की ज़रूरत है। वैज्ञानिक तथा आम-साधारण लोग नए-नए विचारों और सिद्धान्तों पर निरन्तर उड़ान भरते रहते हैं। इनमें से अधिकतर तो जन्म ही नहीं लेते क्योंकि उससे पहले ही, करीब से जाँचे जाने पर वे तार्किक आधार पर त्रुटिपूर्ण निकलते हैं। अन्य ऐसे ही सिद्धान्त और विचार बीच में ही छोड़ दिए जाते हैं - अधिक प्रमाण मिलने के इन्तज़ार में, या फिर तकनीकी समस्याओं के हल के अभाव में। कुछ को इसलिए भी ताक पर रख दिया जाता है क्योंकि हम ज्ञान के

अपने वर्तमान स्तर के आधार पर उन्हें सार्थक नहीं मान पाते।

तो, विज्ञान गहन आलोचना की एक प्रक्रिया है। कुछ ही विचार खोजी वैज्ञानिक की आत्मालोचना के पहले दौर से बच पाते हैं और हमेशा यही कुछ विचार होते हैं जिनके बारे में हमें सुनने को कुछ मिलता है। लेकिन स्वयं को इस बात के लिए राज़ी कर लेना बहुत ही आसान होता है कि आपके दिमाग की नवीनतम उपज आइंस्टाइन द्वारा 1905 में दिए गए सापेक्षता के सिद्धान्त के बाद से अब तक का सब से सूझवान, प्रवीण विचार है। अफसोस है कि इन्सान की प्रजाति में नए और असाधारण विचारों को बेचने वाले स्वयंभू मसीहों की कभी भी कमी नहीं रही है। इसलिए समस्या यह है कि रास्ते में आने वाले प्रत्येक खयाली पुलाव पर समय बरबाद करने से बचा कैसे जाए। सही अर्थों में किसी मूल्यवान तर्काधार और कम मूल्यवान तर्काधार में से एक का चुनाव करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि उसे सार्वजनिक वाद-विवाद के क्षेत्र में ला कर जाँच लिया जाए। यदि आपके द्वारा प्रतिपादित विचार आप के सहकर्मियों द्वारा किए गए शुरुआती शंकापूर्ण स्वागत को झेल जाता है तो अधिक सम्भावना है कि आप उसे आगे ले जाने के लिए आश्वस्त रहेंगे (खास तौर से तब जब आपका प्रत्येक सहकर्मी अपने ही सबसे प्यारे विचार या सिद्धान्त को सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त के रूप में देख रहा हो!)। और यदि आपका विचार शुरुआत में ही नकार दिया जाता है जब कि आप का पक्का विश्वास है कि वह एक बहुत ही अच्छा सिद्धान्त है, तो सम्भावना है कि आपने उसके प्रभावों और मान्यताओं के बारे में इस गहराई तक नहीं सोचा कि आप शंका करने वालों को अपनी बात पर सहमत कर पाएँ। अपने विचार को त्यागने की बजाए चाहिए यह कि अपनी मान्यताओं पर फिर से, अधिक सावधानी के साथ सोच-विचार किया जाए ताकि आप उसके बारे में लोगों को अधिक आश्वस्त कर सकें। इसी प्रक्रिया में या तो सिद्धान्त की छिपी हुई त्रुटियाँ सामने आ जाएँगी या फिर सिद्धान्त पर दोबारा इस प्रकार काम किया जाएगा कि उसके हक में दी गई दलीलें दूसरों को राज़ी करने के लिए अधिक कारगर सिद्ध होंगी।

यह द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया विज्ञान का एक अन्तरंग हिस्सा है, और इस रूप में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है कि वह एक ही समय पर कई विचारों की वजह से हमारा ध्यान भंग होने से हमें बचाती है। इसी से फेयरअबेंट के विचारदर्शन के लिए सबसे गम्भीर समस्या पैदा होती है। विज्ञान आम तौर पर नए विचारों के सावधान मूल्यांकन और जाँच-परख के आधार पर विकास करता है। जब तक वह मूल्यांकन पूर्ण न हुआ हो (न्यूटोनियन भौतिकशास्त्र के मामले में इसके लिए

दो सदियों का एक बड़ा हिस्सा गुज़रा!), प्रत्येक नए विचार का पीछा करने से कोई लाभ नहीं होने वाला। बिना यह जाने कि पुराना सिद्धान्त किस हद तक गलत है, हमारे पास यह तय करने का कोई आधार नहीं रहता कि एक बेहतर सिद्धान्त में क्या कर पाने की क्षमता होना आवश्यक है। वह बिलकुल हमारी नाक के सामने हो तो भी हम उसे पहचान नहीं पाएँगे।

इसलिए, हालाँकि फेयरअबेंट का अतिवादी सुझाव वास्तविक संसार की खोजबीन की मेहनत करने की बजाए कुर्सी पर बैठे-बैठे अन्दाज़े लगाने वालों के लिए आरामदायक हो सकता है, अक्षरशः देखें तो यह विज्ञान के लिए एक असन्तुष्टि भरा नुस्खा है और इसका कारण संज्ञान के स्तर पर हमारी कमज़ोरियों से सम्बद्ध हैः जटिल सिद्धान्तों में कारण-प्रभाव सम्बन्धों की भूलभुलैया में से होकर ध्यानपूर्वक सोच पाना हमें अविश्वसनीय हद तक मुश्किल लगता है, और इसीलिए हम बहुत ही दिलचस्प और उत्तेजक ढंग से तैयार किए गए लेकिन बेहद त्रुटिपूर्ण विचारों द्वारा आसानी से विचलित हो जाते हैं।

इस सबसे उभरने वाली महत्वपूर्ण बात यह है कि विज्ञान एक विधिसंगत नुस्खा है, न कि सिद्धान्त का कोई विशेष कलेवर। यह तो एक विधि है जिसके माध्यम से हम तर्काधारों के सृजन तथा उनसे प्राप्त भविष्यवाणियों की जाँच के आधार पर संसार के बारे में जानकारी हासिल करते हैं। अन्य के अलावा सामाजिक मानवविज्ञानियों ने तर्क दिया है कि यह नज़रिया आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति में ही पाया जाता है। लेकिन क्या यह सच में सही है? ...अनुभवसिद्ध विज्ञान के तौर-तरीके वास्तव में सार्वभौमिक हैं और जीवन के सब उच्च स्वरूपों की विशेषता हैं।

फेयरअबेंट विज्ञान की श्रेष्ठता स्वीकार करने में क्या आपत्तियाँ उठाते हैं? लेखक किन तर्कों से फेयरअबेंट की अराजकतावादी सोच के विरुद्ध विज्ञान की तर्कसंगतता का बचाव करते हैं?

**रॉबिन डनबारः** यूनिवर्सिटी ऑफ ऑक्सफोर्ड में सोशल एंड एवोल्यूशनरी न्यूरोसाइंस रिसर्च ग्रुप, एक्सपेरीमेंटल सायकोलॉजी विभाग के विभागाध्यक्ष हैं और एवोल्यूशनरी साइकोलॉजी के प्राध्यापक हैं। बहुत-सी शैक्षिक पुस्तकें लिखी हैं और दो साल विज्ञान लेखन भी किया है।
**अँग्रेज़ी से अनुवादः रमणीक मोहन।**

यह लेख रॉबिन डनबार की किताब *दी ट्रबल विद साइंस*, फेबर एंड फेबर, 1995, से लिया गया है।

*आप इस लेख को एकलव्य द्वारा विज्ञान शिक्षण पर तैयार की जा रही पुस्तक के अन्तर्गत भी पढ़ सकेंगे।*